

में कौन हूँ?

भगवान्
श्री रमण महर्षि
के उपदेश

अनुवाद
कमलनाथ त्रिपाठी



श्री रमणाश्रमम्
तिरुवण्णामलै
भारत

Mein Kaun Hun? – Hindi (Tr. of “Who Am I?”)

© Sri Ramanasramam
Tiruvannamalai

First Edition : 2010 — 3000 copies

Second Edition : 2018

2000 Copies

CC No: 3501

ISBN: 978-81-8288-121-1

Price: Rs.

Published by
V.S. Ramanan
President
Sri Ramanasramam
Tiruvannamalai 606 603
Tamil Nadu
INDIA

email: ashram@gururamana.org
website: www.sriramanamaharshi.org

Printed by
Sudarsan Graphics Pvt. Ltd.,
Chennai 600 017
Tamil Nadu, INDIA

प्रकाशकीय वक्तव्य

‘मैं कौन हूँ?’ आत्म-अन्वेषण से जुड़े प्रश्नोत्तर का संग्रह है। ये प्रश्न सन् 1902 में श्री शिवप्रकाशम् पिल्लै द्वारा भगवान् रमण महर्षि से पूछे गए थे। भगवान् उस समय विरूपाक्ष गुफा में मौनावस्था में थे। उन्होंने प्रश्नों के उत्तर लिख कर दिए। प्रश्नोत्तर का यह संग्रह सर्वप्रथम सन् 1923 में श्री पिल्लै द्वारा तमिल भाषा में ‘नान यार?’ शीर्षक से प्रकाशित कराया गया। बाद में यह कई बार अनेक भाषाओं में प्रकाशित हुआ। ‘मैं कौन हूँ?’ में भगवान् रमण महर्षि से पूछे गए 28 प्रश्न और उनके उत्तर हैं।

प्रश्नोत्तर रूप में अनेक भाषाओं में अनुवादित ‘नान यार?’ (‘मैं कौन हूँ?’) किन्हीं कारणों से हिन्दी भाषा में प्रकाशित नहीं हो सका था। हिन्दी में ‘मैं कौन हूँ?’ लेख रूप में होते हुए भी प्रश्नोत्तर स्वरूप नहीं था। भगवान् के अनुग्रह से हिन्दी भाषा में प्रश्नोत्तर रूप में यह ग्रन्थ प्रथम बार प्रकाशित किया जा रहा है। हमें विश्वास है कि ‘मैं कौन हूँ?’ के इस ग्रन्थ का राष्ट्रभाषा हिन्दी में यह प्रकाशन असंख्यों का मार्गदर्शन करेगा।

1 सितम्बर 2010
अरुणाचल आगमन दिवस

वी. एस. रमणन्
अध्यक्ष
श्री रमणाश्रमम्

ॐ नमो भगवते श्रीरमणाय

मैं कौन हूँ?

सभी जीव दुःख रहित शाश्वत सुख की इच्छा रखते हैं तथा हर किसी में यह देखा गया है कि उसे स्वयं के प्रति सर्वाधिक प्रेम होता है। सुख ही प्रेम का कारण है, वह सुख जो स्वयं का स्वभाव है और जिसकी अनुभूति मन रहित, गहन निद्रा की अवस्था में होती है; इसकी प्राप्ति के लिए व्यक्ति को अपने स्वयं को जानना चाहिए। उसके लिए 'मैं कौन हूँ?' का ज्ञान विचार ही प्रमुख साधन है।

1. मैं कौन हूँ?

सप्त धातुओं* से बना स्थूल शरीर 'मैं' नहीं हूँ। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध इन पाँचों विषयों को पृथक ग्रहण करनेवाले (क्रमशः) कर्ण, त्वचा, नेत्र, जिह्वा और नासिका – ये पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ भी 'मैं' नहीं हूँ। वाणी, गमन, ग्रहण, मल-विसर्जन, आनन्द – ये पंचविध क्रियाएँ करनेवाली (क्रमशः) वाक्, पाद, पाणि, पायुः और उपस्थ – ये पाँचों कर्मेन्द्रियाँ भी 'मैं' नहीं हूँ। श्वासादि पंचकर्म करनेवाले प्राणादि वायु पंचक भी 'मैं' नहीं हूँ। संकल्प करनेवाला मन भी 'मैं' नहीं हूँ। सर्व विषयों एवं सर्व कर्मों से रहित तथा केवल विषय-वासनाओं से युक्त अज्ञान भी 'मैं' नहीं हूँ।

* रस, रक्त, मांस, मज्जा, मेद, अस्थि और शुक्र।

2. यदि 'मैं' इनमें से कोई नहीं हूँ, तो 'मैं कौन हूँ?'

उपरोक्त सभी को 'नेति-नेति' से निरस्त करने के बाद, जो चैतन्य बचे - 'मैं' वही हूँ।

3. उस चैतन्य का स्वरूप क्या है?

चैतन्य का स्वरूप सच्चिदानन्द है।

4. स्वरूप का दर्शन कब होगा?

जब दृश्य जगत् का लोप हो, तो स्वरूप का बोध होता है, जो कि द्रष्टा है।

5. क्या दृश्य जगत् के बोध (प्रतिभास) के साथ स्वरूप-दर्शन नहीं हो सकता?

नहीं।

6. क्यों?

द्रष्टा और दृश्य, रज्जु और सर्प जैसे हैं। जैसे कि रस्सी का ज्ञान जो अधिष्ठान (आधार) है, तब तक उदित नहीं होगा जब तक कि काल्पनिक सर्प का मिथ्या ज्ञान नहीं चला जाता, उसी प्रकार स्वरूप-दर्शन जो अधिष्ठान (आधार) है, की प्राप्ति तब तक नहीं हो सकती जब तक कि कल्पित जगत्-दृष्टि का विनाश नहीं हो जाता।

7. दृश्य जगत्-बोध का नाश कब होगा?

मन, जो सभी ज्ञान के अनुभवों एवं समस्त कर्मों का कारण है, के लीन होने पर जगत् का लोप हो जाएगा।

8. मन का रूप क्या है?

जिसे 'मन' कहते हैं, वह आत्मा में निवास करनेवाली आश्चर्यजनक शक्ति है। इसी से सभी विचार उदित होते हैं। विचारों के अतिरिक्त, मन जैसी कोई वस्तु है ही नहीं। इसलिए विचार, मन का रूप है। विचारों के अतिरिक्त जगत् का कोई अलग अस्तित्व नहीं है। (गहन) निद्रा में जब कोई विचार नहीं होता, तब कोई जगत् भी नहीं होता है। जाग्रत एवं स्वप्न की अवस्थाओं में जब विचार होते हैं, तब जगत् भी होता है। जैसे मकड़ी स्वयं जाल बुनती तथा पुनः उसे वापिस खींच लेती है; उसी प्रकार मन जगत् को प्रतिबिंबित करता तथा पुनः स्वयं में स्थिर कर लेता है। मन जब 'स्वरूप' के बाहर आता है, तब जगत् प्रकट होता है। इसलिए जब जगत् प्रकट होता है, तब 'स्वरूप' प्रकाशित नहीं होता और जब 'स्वरूप' प्रकट (प्रकाशित) होता है, तब जगत् प्रकट नहीं होता। जब कोई मन के रूप की खोज करता है, तो मन विलुप्त हो जाता है और आत्मा ही रह जाता है। जिसे 'स्वरूप' कहते हैं, वह आत्मा ही है। मन का अस्तित्व सदैव किसी स्थूल पर निरन्तर अवलंबित है, वह अकेला नहीं रह सकता। यह मन ही है, जिसे सूक्ष्म शरीर या जीव कहते हैं।

9. मन के रूप को समझने के लिए अन्वेषण का पथ क्या है?

शरीर में, जो 'मैं' के रूप में उदित होता है, वह मन है। जब कोई खोज करता है कि सर्वप्रथम 'मैं' का विचार शरीर में कहाँ से उदित होता है, तो उसे पता चलता है कि यह हृदय से उदित होता है। वह मन के उदित होने का स्रोत है। यदि कोई लगातार 'मैं'-'मैं' सोचता है, तो वह उस स्थान (स्रोत) पर पहुँच जाएगा। मन में उदित होनेवाले समस्त विचारों में 'मैं' का विचार प्रथम है। प्रथम व्यक्ति सर्वनाम के उदित होने के बाद ही, द्वितीय एवं तृतीय सर्वनाम प्रकट होते हैं। प्रथम वैयक्तिक सर्वनाम के बिना द्वितीय या तृतीय नहीं हो सकते।

10. मन स्थिर (शान्त) कैसे होगा ?

‘मैं कौन हूँ?’ के अन्वेषण द्वारा ही मन शान्त होगा। ‘मैं कौन हूँ?’ का विचार, अन्य सभी विचारों को नष्ट कर देगा तथा जिस प्रकार शव जलानेवाला लुआठा भी अन्त में स्वयं जल जाता है, उसी प्रकार यह भी स्वयं नष्ट हो जाएगा। तब वहाँ स्वरूप-दर्शन होगा।

11. ‘मैं कौन हूँ?’ के विचार को निरन्तर बनाए रखने का उपाय क्या है?

जब दूसरे विचार उदित हों, तो व्यक्ति को उन पर ध्यान नहीं देना चाहिए, बल्कि अन्वेषण करना चाहिए कि ‘वे विचार किसके लिए उदित होते हैं?’ चाहे जितने भी विचार उदित हों, उनसे कोई अंतर नहीं पड़ता है। जैसे ही कोई विचार उदित हो, व्यक्ति को तत्परता से खोज करनी चाहिए कि ‘किसके लिए यह विचार उदित हुआ?’ उत्तर आएगा – ‘मेरे लिए’। इस पर जब व्यक्ति खोज करे कि ‘मैं कौन हूँ?’ तो मन अपने स्रोत में वापिस चला जाता है और उदित हुआ विचार शान्त हो जाता है। इसके बारंबार अभ्यास से मन अपने स्रोत में रहने की दक्षता विकसित कर लेता है। मन जो सूक्ष्म है, जब बुद्धि एवं ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा बाहर जाता है, तो स्थूल नाम, रूप प्रकट होते हैं और जब यह हृदय में निवास करता है, तो नाम, रूप विलुप्त हो जाते हैं। मन को बाहर जाने से रोककर, उसे हृदय में स्थिर करने को अहंमुख या अंतर्मुखी होना कहते हैं। मन को हृदय से बाहर जाने देने को बहिर्मुखी होना कहते हैं। इस प्रकार जब मन हृदय में निवास करता है, तो ‘मैं’ जो सभी विचारों का मूल है, लुप्त हो जाता है और सदैव अस्तित्वमान् ‘स्वरूप’ प्रकाशित होता है। व्यक्ति चाहे जो भी करे, उसे बिना ‘मैं’ के अहंकार के कर्म करना चाहिए। जब कोई इस प्रकार से कर्म करता है, तो उसके समक्ष सब कुछ ‘शिव-स्वरूप’ के रूप में प्रकट होगा।

12. क्या मनोनिग्रह के दूसरे उपाय नहीं हैं?

आत्म-विचार के अतिरिक्त, कोई अन्य उपाय उपयुक्त नहीं हैं। यदि दूसरे उपायों से मनःनियंत्रण का प्रयास किया जाए, तो लगता है कि मन नियंत्रित है किन्तु वह पुनः प्रकट हो जाता है। प्राणायाम के द्वारा भी मन स्थिर हो जाएगा किन्तु वह तभी तक नियंत्रित रहेगा जब तक कि प्राण नियंत्रित है और जब श्वसन आरम्भ होगा, तो मन पुनः गतिशील हो जाएगा तथा संचित वासनाओं के अनुरूप भटकेगा। मन और प्राण, दोनों का स्रोत एक ही है। निश्चित ही विचार, मन का रूप है। 'मैं' का विचार, मन का प्रथम विचार है और यही अहंकार है। जहाँ से अहंकार उत्पन्न होता है, वहीं से श्वसन भी आरम्भ होता है। इसलिए जब मन स्थिर होता है, तो श्वास नियंत्रित हो जाता है और जब श्वास नियंत्रित होता है, तो मन स्थिर हो जाता है। किन्तु सुषुप्ति में, यद्यपि मन स्थिर रहता है किन्तु श्वास नहीं रुकता है। यह ईश्वरीय इच्छा के कारण है ताकि शरीर सुरक्षित रहे और लोग यह नहीं समझें कि यह मर गया है। जाग्रत एवं समाधि की अवस्थाओं में, जब मन स्थिर हो जाता है, तो श्वास नियंत्रित रहता है। प्राण, मन का स्थूल रूप है। मृत्यु के क्षण तक मन, प्राण को शरीर में रखता है। जब शरीर मर जाता है तो मन, प्राण को साथ ले जाता है। इसलिए प्राणायाम का अभ्यास मनोनिग्रह में सहायक तो है किन्तु यह मन का नाश नहीं करता।

प्राणायाम की भाँति मूर्तिध्यान, मंत्रजप, आहार-नियमन, इत्यादि मन को स्थिर करने में सहायक हैं। मूर्तिध्यान एवं मंत्रजप से मन एकाग्र हो जाता है। मन का स्वभाव है - सदा चंचल रहना। जैसे सदा हिलते रहनेवाले हाथी की सूँड़ में यदि एक जंजीर दे दी जाए, तो वह हाथी किसी अन्य वस्तु को पकड़ने का प्रयत्न किए बिना ही, उस जंजीर को पकड़ कर चलता रहेगा, उसी प्रकार मन को भी किसी नाम या रूप (ईश्वर के) में अनुरक्त रहने के अभ्यास से जोड़ा जाए, तो वह उसी

को ग्रहण किए रहेगा। मन जब असंख्य विचारों के रूप में फैलता है, तो प्रत्येक विचार अत्यंत बलहीन होता है किन्तु विचारों के लीन (लुप्त) होते ही मन एकाग्र एवं बलवान हो जाता है। ऐसे मन के लिए आत्म-अन्वेषण सरल हो जाता है। सकल नियमों में से श्रेष्ठ है - मित एवं सात्विक आहार। इन नियमों के पालन से मन में सद्गुण की वृद्धि होती है, जो आत्म-अन्वेषण में सहायक है।

13. समुद्र की लहरों की भाँति संचित विषय-वासनाओं के असीमित विचार प्रकट होते हैं, वे सब कब नष्ट होंगे?

स्वरूप-ध्यान तीव्र होते ही, वे विचार क्रमशः नष्ट हो जाएँगे।

14. क्या आदिकाल से चली आ रही विषय-वासनाओं का विनष्ट होना तथा स्वरूप मात्र बनकर रहना संभव है?

‘यह संभव है या नहीं?’ इस संदेह को स्थान दिए बिना, निरन्तर स्वरूप-ध्यान में सुदृढ़ रहना चाहिए। कोई चाहे कितना ही बड़ा पापी क्यों न हो, ‘मैं तो पापी हूँ, मेरा उद्धार कैसे हो सकता है?’ यों दीन हो विलाप एवं चिंता न करते हुए, ‘मैं पापी हूँ’ के विचार को पूरी तरह से त्यागकर, यदि वह सतत स्वरूप-ध्यान में संलग्न रहे, तो निश्चित ही सफल होगा।

शुभ मन और अशुभ मन, ऐसे दो मन नहीं हैं। मन एक ही है। वासनाएँ ही, शुभ एवं अशुभ, दो तरह की होती हैं। मन जब शुभ वासनाओं के वशीभूत हो, तब उसे शुभ मन कहते हैं और जब अशुभ वासनाओं के वशीभूत रहे, तब वह अशुभ मन कहलाता है।

प्रपंच विषयों में मन नहीं लगाना चाहिए तथा उसे दूसरों के कार्यों में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। दूसरे लोग कितने भी बुरे क्यों न हों, उनसे द्वेष नहीं करना चाहिए। राग-द्वेष, दोनों ही त्याज्य हैं। दूसरों को जो कुछ दिया जाता है, (वह सब) अपने आपको ही दिया जाता है। इस सत्य

को जान लेने के बाद, भला कौन दूसरों को नहीं देना चाहेगा? अहंता के उदित होने से सबकुछ उदित होगा, अहंता के विलीन होने से सबकुछ विलीन हो जाएगा। हम जितना अधिक विनम्र हो आचरण करेंगे, उतना ही अधिक हमारा हित होगा। मन को निग्रहित करके, कोई कहीं भी रह सकता है।

15. आत्म-अन्वेषण का अभ्यास कब तक करना चाहिए?

जब तक मन में विषय-वासनाएँ रहती हैं, तब तक 'मैं कौन हूँ?' का अन्वेषण आवश्यक है। ज्यों-ज्यों विचार उठते हैं, त्यों-त्यों (उनके उत्पत्ति स्थान में ही) आत्म-अन्वेषण द्वारा उन सबका नाश करना चाहिए। आत्म-स्वरूप की प्राप्ति तक यदि कोई निरन्तर स्वरूप-स्मरण में रहे, तो यह साधना ही पर्याप्त है। जब तक दुर्ग के भीतर शत्रु हैं, तब तक वे उससे बाहर आते रहेंगे। ज्यों-ज्यों वे बाहर आएँ तथा उन्हें मारते रहें, तो दुर्ग जीत लिया जाएगा।

16. स्वरूप का स्वभाव क्या है?

यथार्थ में जो अस्तित्वमान् है, वह केवल आत्मस्वरूप है। जगत्, जीव और ईश्वर इसमें मोती में चाँदी के आभास की भाँति कल्पित प्रतीति हैं। ये तीनों एक ही समय प्रकट होकर, एक ही समय लुप्त होते हैं। जिस स्थान पर 'मैं' का किंचित मात्र विचार नहीं होता, वहाँ 'स्वरूप' है, वही मौन है, 'स्वरूप' स्वयमेव जगत् है, 'स्वरूप' स्वयमेव 'मैं' है, 'स्वरूप' स्वयमेव ईश्वर है, सब कुछ 'शिव-स्वरूप' है।

17. क्या सब कुछ ईश्वर के कार्य नहीं हैं?

बिना किसी इच्छा, संकल्प या प्रयास के आदित्य उदित होता है; और उसकी उपस्थिति मात्र से सूर्यकान्त मणि पत्थर अग्नि उगलता है, कमल खिलता है, पानी वाष्पित होता है, लोग विभिन्न कार्यों में प्रवृत्त होते हैं तथा उन्हें करने के बाद आराम करते हैं। जिस प्रकार चुम्बक

के समक्ष सूर्य हिलती है, उसी प्रकार संकल्प विहीन ईश्वर की सन्निधि मात्र से होनेवाली तीन क्रियाओं* अथवा पंच कृत्यों† से नियंत्रित सकल जीव अपने-अपने कर्मानुसार कार्य कर विश्राम करते हैं। ईश्वर संकल्प रहित है, वह किसी कर्म से बँधा नहीं है। यह ठीक उसी प्रकार है, जैसे लौकिक क्रियाएँ सूर्य को प्रभावित नहीं करतीं या अन्य चार भूत‡ के गुण-अवगुण व्यापक आकाश पर प्रभाव नहीं डाल पाते।

18. भक्तों में श्रेष्ठ कौन है?

‘स्वरूप’ के रूप में उपस्थित ईश्वर को, जो स्वयं को समर्पित करे, वही सबसे उत्तम भक्त है। ईश्वर को समर्पित करने का अर्थ है निरन्तर आत्मा में बने रहना, और आत्मा के अतिरिक्त किसी अन्य विचारों को उदित न होने देना।

ईश्वर के ऊपर जो भी भार फेंके जाते हैं, वह उनको वहन करता है। जब परमेश्वर की शक्ति, सकल चीजों को संचालित करती है, तो अपने आपको उसको बिना समर्पित किए, क्यों हम निरन्तर विचार द्वारा चिन्ता करते हैं कि क्या करना और किस प्रकार करना चाहिए? हम जानते हैं कि रेलगाड़ी सभी बोझ ले जाती है, इसलिए उसके भीतर प्रवेश के उपरान्त, हमें अपना छोटा भार रेलगाड़ी में रखकर आराम अनुभव करने की जगह, कष्ट सहते हुए अपना सामान सिर पर क्यों लादे रहना चाहिए?

19. वैराग्य क्या है?

जैसे ही विचार उदित हों, उनके स्रोत पर ही, उनका बिना कोई अवशेष छोड़े, उन्हें तुरन्त नष्ट कर देना ही वैराग्य है। जैसे एक गोताखोर,

* सृष्टि, स्थिति एवं संहार।

† सृष्टि, स्थिति, संहार, तिरोधान एवं अनुग्रह।

‡ पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु।

अपनी कमर पर एक पत्थर बाँधे, समुद्र के तल पर गोता लगाता है तथा वहाँ से मोती प्राप्त करता है, उसी प्रकार हममें से प्रत्येक को वैराग्य द्वारा अपने स्वयं के भीतर गोता लगाना चाहिए तथा आत्मा रूपी मोती प्राप्त करना चाहिए।

20. क्या ईश्वर या गुरु किसी जीव को मुक्ति नहीं दे सकते?

ईश्वर या गुरु केवल मुक्ति का मार्ग दिखाएँगे, वे स्वयं जीव को मुक्ति की अवस्था तक नहीं ले जा सकते।

वास्तव में ईश्वर एवं गुरु भिन्न नहीं हैं। जिस प्रकार बाघ के जबड़े में आया शिकार बाहर नहीं निकल पाता, उसी प्रकार जो गुरु की कृपादृष्टि की परिधि में आ गए हैं, वे नष्ट नहीं होंगे बल्कि गुरु द्वारा रक्षित होंगे; तथापि हर किसी को ईश्वर या गुरु द्वारा दर्शाए गए मार्ग पर स्वयं प्रयत्न करना एवं मुक्ति प्राप्त करना चाहिए। स्वयं को, स्वयं के ज्ञानचक्षु द्वारा जानना है, कोई किसी दूसरे के चक्षु द्वारा कैसे जान सकता है? क्या राम को यह जानने के लिए कि वह राम है, एक दर्पण की आवश्यकता होगी?

21. मुक्ति की इच्छा रखनेवाले को क्या तत्त्वों का अन्वेषण करना आवश्यक है?

जिस प्रकार कोई कूड़े को फेंकना चाहे, तो उसे उसका विश्लेषण करने या यह देखने की आवश्यकता नहीं होती कि वह क्या है, उसी प्रकार जो अपना 'स्वरूप' जानना चाहे, तो उसे 'स्वरूप' को ढँकने वाले तत्त्वों को निरस्त करने के स्थान पर उनकी संख्या गिनने या उनकी विशेषताएँ जानने की आवश्यकता नहीं है। संसार को स्वप्न जैसा ही मानना चाहिए।

22. क्या जाग्रत एवं स्वप्न में कोई भेद नहीं है?

जाग्रत की अवस्था दीर्घ तथा स्वप्न की क्षणिक होती है, इसके अतिरिक्त उनमें कोई भेद नहीं है। जाग्रत अवस्था में, जाग्रत की घटनाएँ

जितनी सच लगती हैं, उसी प्रकार स्वप्न के समय, स्वप्न की घटनाएँ भी उतनी ही वास्तविक लगती हैं। स्वप्न में, मन एक दूसरा ही शरीर धारण करता है। जाग्रत एवं स्वप्न, दोनों ही अवस्थाओं में नाम, रूप के विचार एक साथ आते रहते हैं।

23. क्या मुमुक्षु के लिए शास्त्र पढ़ना उपयोगी है?

सभी शास्त्र कहते हैं कि मुक्ति पाने के लिए मन को निग्रहित करना चाहिए; इसलिए उनके उपदेशों का सार है कि मन को शान्त करना चाहिए; एक बार इसे समझ लेने पर अत्यधिक अध्ययन की कोई आवश्यकता नहीं है। मन को स्थिर करने के लिए हमें अपने स्वयं के भीतर, मात्र अन्वेषण करना चाहिए कि हमारा 'स्वरूप' क्या है; यह अन्वेषण शास्त्रों में कैसे किया जा सकता है? अपने स्वयं की ज्ञानदृष्टि से, अपने आत्मा को जानना चाहिए। 'स्वरूप' पंचकोशों के भीतर है किन्तु शास्त्र उनके बाहर हैं। चूँकि अपने 'स्वरूप' का अन्वेषण पंचकोशों के निरस्तीकरण से करना है, इसलिए इसे शास्त्रों में खोजना व्यर्थ है। एक समय आएगा, जब हमें अपनी समस्त सीखी हुई चीजों को भूलना होगा।

24. सुख क्या है?

सुख, आत्मा का सहज स्वभाव है। सुख एवं 'स्वरूप' अलग नहीं हैं। संसार की किसी वस्तु में कोई सुख नहीं है। हम अपने अविवेक के कारण कल्पना करते हैं कि हमें प्रपंच वस्तुओं से सुख प्राप्त होता है। जब मन बहिर्मुखी होता है, तो यह दुःख अनुभव करता है। वास्तव में जब इसकी इच्छाएँ पूर्ण होती हैं, तो यह अपने स्रोत स्थान पर वापिस लौटता तथा केवल सुख अनुभव करता है, जो कि आत्मा है। इसी प्रकार की स्थिति सुषुप्ति, समाधि या मूर्छा की अवस्था में होती है और जब ऐच्छिक वस्तु की प्राप्ति या अनैच्छिक मिट जाता है, तो मन

अंतर्मुखी होकर केवल आत्मसुख अनुभव करता है। किन्तु इस प्रकार मन, बिना आराम के, निरन्तर विचलित रहता है, यह क्रमशः आत्मा के बाहर जाता और पुनः इसमें वापिस लौटता है। पेड़ के नीचे छाया सुखकर लगती है जबकि खुले स्थान में सूर्य का ताप सहन नहीं होता। जो छाया को छोड़कर, सूर्य के ताप में भटकता तथा वापिस छाया में लौटता है, वह अविवेकी है। जिस प्रकार विवेकी व्यक्ति स्थायी रूप से छाया में ही रहता है, उसी प्रकार ज्ञानी का मन ब्रह्म को नहीं छोड़ता। जबकि इसके उलट, अज्ञानी का मन संसार में घूमता रहता तथा दुःख की अनुभूति करता है और अल्प समय के लिए आनन्द की अनुभूति के लिए ब्रह्म में वापिस लौटता है। वास्तव में जिसे जगत् कहा गया है, वह केवल विचार है। जब जगत् विलुप्त होता है अर्थात् जब कोई विचार नहीं रहता, तो मन आनन्द की अनुभूति करता है और जब जगत् प्रकट होता है, तो उसे दुःखों की अनुभूति होती है।

25. ज्ञान-दृष्टि क्या है?

मौन रहना ज्ञानदृष्टि है। मौन रहने का अर्थ मन को आत्मस्वरूप में लीन करना है। यह अवस्था ही ज्ञानदृष्टि कहलाती है। दूसरों के विचार पढ़ना या जानना; भूत, भविष्य एवं वर्तमान का त्रिकाल ज्ञान; दूर देशों की घटनाओं को जानना; इन सबको कभी ज्ञानदृष्टि नहीं कहा जा सकता।

26. वैराग्य तथा ज्ञान के बीच क्या संबंध है?

वैराग्य स्वयं ज्ञान है। वैराग्य एवं ज्ञान अलग नहीं है; वस्तुतः दोनों एक ही हैं। मन को किसी वस्तु की ओर जाने से रोकना वैराग्य है। ज्ञान का अर्थ, आत्मा के अतिरिक्त, किसी अन्य वस्तु का प्रकट न होना है। दूसरे शब्दों में, आत्मा के अतिरिक्त, किसी अन्य वस्तु में प्रवृत्त न होना ही वैराग्य है। 'स्वरूप' का कभी परित्याग न करना ही ज्ञान है।

27. अन्वेषण एवं ध्यान में क्या भेद है?

मन को आत्मा में स्थित करना, अन्वेषण है। हमारा आत्मा ही ब्रह्म एवं सच्चिदानन्द है, का निरन्तर भाव ध्यान है।

28. मुक्ति क्या है?

बंधन में पड़े अहम् का अन्वेषण करना तथा बंधन से मुक्त अपने यथार्थ स्वरूप को जानना मुक्ति है।



ॐ तत् सत्
श्री रमणार्पणमस्तु